प्रकाशित: 15 मई 2018 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

भारत में वामपंथी उसी सड़ी-गली विचारधारा से आज भी क्यों बंधे हुए

बलबीर पुंज

जर्मन दार्शनिक और वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता कार्ल मार्क्स को उनकी 200वीं जयंती पर भारत सहित दुनिया भर में स्मरण किया जा रहा है। पांच मई , 1818 को एक यहूदी परिवार में जन्मे और छह वर्ष की आयु में ईसाई धर्म अपनाने वाले माक्र्स ने अपने जीवनकाल में जिस साम्यवादी दर्शन को प्रस्तुत किया वह आज किस स्थिति में है , इसका मूल्यांकन आवश्यक है। किसी भी विचारधारा या फिर दर्शन का सटीक एवं तार्किक अध्ययन उसके परिणाम से होता है। 'वर्ग-संघर्ष', 'सर्वहारा' और 'जन-क्रांति' कार्ल माक्र्स के वैज्ञानिक समाजवाद के केंद्र-बिंदु रहे। यह सत्य है कि मार्क्स के चिंतन ने प्रारंभ में सामंतवाद और अराजक पूंजीवाद से जकड़े यूरोप में श्रमिकों और वंचितों के शोषण पर रोक तो लगाई , किंतु उसकी वास्तविकता अल्पकाल में ही सामने आ गई। माक्र्स ने जिस समाजवाद का उल्लेख किया गया उसी से अंगीकृत दुनिया के जिस भू-भाग में साम्यवादियों की सरकार आई वहां अधिनायकवादी शासन में साधारण नागरिक के अधिकार छीन लिए गए और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी लोगों को तरसना पड़ा।बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में रूसी क्रांतिकारियों ने साम्यवादी विचारों से ओतप्रोत होकर रोमानोव वंश के अंतिम सम्राट जार निकोलस-द्वितीय के शासन को उखाड़ फेंका। इसके बाद सात नवंबर 1917 को व्लादिमीर लेनिन के नेतृत्व में विश्व की पहली माक्र्सवादी व्यवस्था स्थापित हुई , जो बोल्शेविक क्रांति के नाम से जानी जाती है। किसान- श्रमिक हितैषी और पूंजीवाद की धुर विरोधी मानसिकता की सरकार बनते ही रूस में खूनी खेल प्रारंभ हो गया। जो कोई लेनिन या उनके शासन के विरुद्ध बोलता, गुप्तचर पुलिस उसकी हत्या कर देती। लेनिन की मृत्यु के बाद जब सोवियत रूस की जिम्मेदारी क्रूर जोसेफ स्टालिन ने संभाली तब यह रक्तरंजित परंपरा एकाएक गतिमान हो गई। उस कालखंड में विरोधियों को खत्म करने के अलावा साम्यवाद का विरोध करने वाले 30 लाख से अधिक लोगों को जबरन साइबेरिया स्थित गुलग यानी एक तरह की कैद में भेजा गया। यहां श्रम के नाम पर उनका उत्पीड़न किया जाता था। यदि हिटलर अपने काले कारनामों के लिए मानवता के लिए कलंक था तो लेनिन , स्टालिन

और माओ के साथ अलग व्यवहार क्यों? क्या ये सब भी मानवता के लिए अभिशाप नहीं? माक्र्स दर्शन से जनित खूनी चिंतन सोवियत रूस से होते हुए पूर्वी यूरोप , चीन, कोरिया, कंबोडिया आदि देशों में भी पहुंचा। 1975-1979 के कंबोडियाई नरसंहार के बाद कोई संदेह नहीं रह जाता कि माक्र्सवाद में जिस समाज को आदर्श बताया गया है उसमें लोकतंत्र और सभी मानवाधिकार निरर्थक हैं। क्रूर तानाशाह पोल पोट की साम्यवादी खमेर रूज क्रांति में लाखों राजनीतिक और वैचारिक विरोधियों को मार दिया गया। सामूहिक फांसी , निर्मम हत्या और श्रम यातनाओं के अतिरिक्त कुपोषण और भयंकर बीमारियों के कारण 20-30 लाख कंबोडियाई आबादी ही खत्म हो गई। माक्र्सवादी जिस सर्वहारा और सामाजिक दर्शन का नगाड़ा आज भी बजा रहे हैं उसकी आर्थिक नीतियों से सर्वाधिक नुकसान और शोषण श्रमिकों का ही हुआ है। 1990 तक कम्युनिस्टों के शासन वाले पूर्वी जर्मनी के लोग जब बर्लिन की दीवार गिरने पर पश्चिम बर्लिनवासियों से मिले तो उन्हें अपने उत्पीड़न का अंदाजा हुआ। पश्चिमी जर्मनी के श्रमिकों को दिए जा रहे वेतन के अनुपात में पूर्वी जर्मनी के श्रमिकों का वेतन आधे से भी कम था। जब पोलैंड के वामपंथी शासन में श्रमिकों को जानकारी हुई कि उन्हें जो वेतनमान मिल रहा है वह कुछ भी नहीं तो उन्होंने विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। बीती सदी के सातवें दशक में उभरे इस आंदोलन के कारण वहां कम्युनिस्टों का राजपाट सिमट गया। आठवें दशक के अंत में पूर्वी यूरोप के देशों ने सामूहिक रूप से माक्र्सवादी नेतृत्व कोनकारते हुए 'सर्वहारा तानाशाही' शासन के स्थान पर मुक्त अर्थव्यवस्था को प्राथमिकता दी।नौवां दशक आते-आते विश्व से माक्र्सवादी समाजशास्त्र का मुलम्मा पूरी तरह उतर गया। दमनकारी वामपंथी शासन में हिंसा , गरीबी, उत्पीड़न और भुखमरी की कड़वी सच्चाई को पूरी दुनिया ने देखा। सोवियत-आर्थिक ढांचे से प्रेम के कारण ही भारत में भी यह स्थिति आई और 1991 में देश को अंतरराष्ट्रीय देनदारियां चुकाने के लिए स्वर्ण भंडार तक गिरवी रखना पड़ा। 21वीं शताब्दी में माक्र्सवादी दर्शन के साथ एकदलीय साम्यवादी शासन और समाजवादी गणराज्य वाले पांच देश- चीन , क्यूबा, लाओस, वियतनाम और उत्तरी कोरिया ही दुनिया में बचे हैं जहां के शासक माक्र्स , माओ और लेनिन को अपना आदर्श मानते है। नेपाल, भारत, रूस, ब्राजील सहित सात बहुदलीय राष्ट्र ऐसे है जहां उनका थोड़ा-बहुत प्रभाव है। आबादी और क्षेत्रफल के लिहाज से चीन दुनिया का सबसे बड़ा साम्यवादी राष्ट्र है। यहां की केंद्रीय राजनीति में आज भी वामपंथी अधिनायकवाद का आधिपत्य है। उसकी आर्थिकी मानवविरोधी पूंजीवाद से ग्रस्त है। परमाणु संपन्न साम्यवादी उत्तर कोरिया विश्व के सबसे दमनकारी देशों में शामिल है। पूर्ववर्तियों की भांति वर्तमान तानाशाह किम जोंग भी विरोधियों के दमन के लिए कुख्यात है।माक्र्स के मानसपुत्रों लेनिन , स्टालिन, माओ के पिछलग्गू बनकर और उनसे प्रेरणा लेकर भारतीय वामपंथी आज भी उसी विकृत समाज की कल्पना कर रहे हैं जिसे दुनिया ने दशकों पहले खारिज करके दफन कर दिया था। 1925 के अंत में राजनीतिक दल के रूप में स्थापित हुए वामपंथियों के लिए देश की अखंडता , बहुलतावाद और

राष्ट्रवाद एक तरह के शोषण और वैचारिक विरोध का समरूप है। इसी कारण कम्युनिस्टों ने सदैव ही भारत को टुकड़ों और भारतीय समाज को मजहब-जातियों में बांटने का हरसंभव प्रयास किया और आज भी ऐसा कर रहे हैं। 1947 में पाकिस्तान का जन्म, 1962 में चीन का समर्थन, 1998 में पोखरण-2 का विरोध और 2016 में प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों में भारत विरोधी नारे लगाने जैसी घटनाओं की सूची अंतहीन है। भारतीय वामपंथियों की एक विशेषता यह भी है कि वे सत्ताच्युत होने पर लोक अधिकारों , अभिव्यक्ति, प्रजातंत्र और संविधान की बातें करते हैं , किंतु सत्तासीन होने के बाद इन्हीं मूल्यों की हत्या करने में देर नहीं लगाते। केरल में राजनीतिक विरोधियों का दमन, मतभेद के अधिकार का हनन और हिंसा इसके उदाहरण हैं। पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा भी इसी दंश को झेल चुके हैं। आज जब माक्र्स का दर्शनशास्त्र अप्रासंगिक हो चुका है और कालांतर में उसे स्वीकार करने वाले देशों ने परिवर्तन को आत्मसात किया है तो भारत में वामपंथी उसी सड़ी-गली विचारधारा से आज भी क्यों बंधे हुए है?

(लेखक राज्यसभा के पूर्व सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)